अध्याय 18
पशु स्वास्थ्य (Animal Health)

18.1 स्वस्थ एवं रोगी पशु की पहचान (Indentification of Healthy and Diseased Animal)

(i) स्वस्थ एवं रोगी पशु के लक्षण :– विभिन्न रोगों के कारण प्रतिवर्ष हजारों पशु मर जाते हैं। जो पशु बीमार होने के बाद ठीक हो जोते हैं, उनकी शारीरिक वृद्धि कम हो जाती है। बीमार दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।

स्वस्थ – पशु की वह अवस्था है जिसमें पशु के शरीर के सभी तंत्र एवं अंग उसकी आयु, लिंग, कार्य एवं उत्पादन के अनुसार सुचारू रूप से कार्य करते हो एवं पशु के शरीर का तापमान, सांस की गति, नाड़ी की गति साधारण हो। दूसरे शब्दों में स्वस्थ बीमारी से मुक्ति है।

बीमारी – स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।

स्वस्थ पशुओ के लक्षण :– पशु द्वारा प्रदर्शित किये गये बाह्य लक्षणों के अनुसार यह पता लगा सकते हैं कि पशु स्वस्थ है या बीमार। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक पशुपालक या फार्म प्रबन्धक को प्रतिदिन अपने पशुओं को निकट से निरीक्षण कराना चाहिए जिससे शीघ्र उपचार कर सके। इसके लिए यह जरूरी है कि उसे एक स्वस्थ या बीमार पशु के लक्षणों की जानकारी हो। स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण तालिका में निम्नांकित हैं–

यह आवश्यक नहीं है कि तालिका 18.1.1 में वर्णित लक्षण सभी रोगों में प्रकट हो क्योंकि अलग–अलग बीमारियों के विशेष लक्षण होते हैं। जिनसे उन्हें पहचानकर रोग का निदान किया जा सकता है। अतः एक पशुपालक पशुओं के सभी क्रियाकलापों से परिचित हो। उसे स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षणों की जानकारी होनी चाहिए। जिससे रोग ग्रसित पशु का शीघ्र से शीघ्र उपचार कराया जा सके एवं आर्थिक हानि से बचा जा सके। यदि उपचार में विलम्ब किया गया तो अधिक हानि होगी।

(ii) पशुओं का शारीरिक ताप :– साधारणतया पशुओं के शरीर का तापमान डॉक्टरी थर्मामीटर को पशुओं के मलाशय (रैक्टम) में रखकर लिया जाता है। लेकिन जब ऐसा करना किसी कारण से असम्भव हो तो योनि (वेजाइना) में थर्मामीटर डालकर तापमान मालूम किया जाता है। तापमान नापने से पहले थर्मामीटर के पारे को अच्छी तरह उतार लेना चाहिए। पारे को साधारणतया हाथ से झटका देकर उतारा जाता है, मगर इस प्रकार पारा शीघ्र न उतरे तो थर्मामीटर के बल्ब को ठण्डे पानी में 2–3 मिनट डालकर फिर झटका देने से पारा उतर जाता है। झटका देते समय बल्ब हाथ में नहीं पकड़ना चाहिए वरन् उसका उल्टा सिरा पकड़ना चाहिए। थर्मामीटर को मलाशय में अंदर डालने के पहले बल्ब वाले सिरे को ग्लिसरीन या वैसलीन की सहायता से चिकना कर लेना चाहिए जिससे वह आसानी से अंदर प्रवेश कर सके। सीधे डालने के बजाय अगर थोड़ा घुमा–घुमा कर डाला जाए तो थर्मामीटर अधिक सुविधा से अंदर प्रवेश कर जाता है। यदि रैक्टम में कड़ा गोबर हो तो उँगली के सहारे से थर्मामीटर को रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से लगा देना चाहिए। भेड़ व बकरी में तापमान लेते समय थर्मामीटर को तिरछा कर दिया जाता है, जिससे वह श्लेष्मिक झिल्ली से लग जाए। सही तापमान के लिए यह आवश्यक है कि थर्मामीटर रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से सम्पर्क में रहे। केवल थर्मामीटर का बल्ब ही अंदर नहीं डालना चाहिए बल्कि उसका लगभग आधा भाग अंदर डालना चाहिए। यदि तापमान मींगणी करने या गोबर करने के तुरंत बाद लिया गया है अथवा निर्धारित समय से कम समय तक अंदर रखा गया हो तो थर्मामीटर के तापमान का पठन वास्तविक शारीरिक तापमान से कम होगा। यदि थर्मामीटर के पठन में कुछ संदेह हो तो तापमान दोबारा लेना चाहिए। थर्मामीटर एक मिनट या डेढ़ मिनट तक अंदर रखना चाहिए। दो–चार मील चलकर आये हुए पशु का तापमान कम से कम आधा घण्टा आराम

तालिका 18.1.1 स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण

क्र.सं.	स्वस्थ पशुओं के लक्षण	रोगी पशुओं के लक्षण
1.	स्वस्थ पशु रेवड़ में रहता है।	बीमार पशु रेवड़ से अलग हो जाता है एवं मुरझाई सी अवस्था में रहता है।
2.	पशु ध्वनि और गति के प्रति उचित संवेदन शीलता दर्शाता है।	बाह्य संवेदक के प्रति पूरी तरह संवेदनशील नहीं रहता।
3.	पशु की त्वचामुलायम, चमकदार, लचीली एवं Pliable होती है। इसकी पहचान गर्दन की चमड़ी को पकड़कर की जा सकती है।	पशु की त्वचा सूखी, मोटी, कम लचीली, चमकहीन व रोंगटे खड़े रहते हैं, त्वचा को हाथ से पकड़ने पर रोए हाथ पर चिपक जाते हैं।
4.	पशु के नथुने नम होते हैं नासारन्ध्र से किसी प्रकार का स्राव नहीं निकलता है।	नथुने शुष्क होते हैं। नासारन्ध्र से पानी जैसा गाढ़ा या खून निकल सकता है।
5.	आंखे चमकदार एवं सचेत होती हैं।	आंखों में कम चमक होती है एवं कुछ बीमारियों में पानी या तरल गाढ़ा पदार्थ निकलता है।
6.	आहार पुरी तरह से खाता है।	आहार खाने में कोई रूचि नहीं लेता।
7.	पशु जुगाली करता रहता है।	जुगाली नहीं करता या कम करता है या लार गिरती है।
8.	पशु ठीक तरह से गोबर करता है गाय भैंस का गोबर अपेक्षकृत ढीला होता है एवं रंग गहरे हरे से गहरा भूरा होता है। गोबर में किसी प्रकार का बुलबुला या खून नहीं होता एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती।	पशु के गोबर के रंग, मात्रा, गाढ़ापन व गन्ध में परिवर्तन आ जाता है। गोबर सूखा या पतला करता है या कब्जी हो जाती है।
9.	पशु के पेशाब का रंग हल्का पीला या पानी जैसा होता है। सामान्य रूप से पेशाब करता है एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती।	पेशाब का रंग गहरे पीले रंग का या लाल रंग जैसा होता है। पेशाब में दुर्गंध आती है। पेशाब करने में तकलीफ, पेशाब की ज्यादा या कम मात्रा।
10.	दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन सामान्य रहता है एवं दुग्ध की गुणवत्ता सामान्य रहती है।	दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। दुग्ध की गुणवत्ता में गिरावट आती है। दुग्ध पानी जैसा या मवाद या खून आता है।
11.	श्वसन क्रिया एवं श्वसन गति सामान्य होती है।	श्वास लेने में कठिनाई, खांसी या दुर्गंध युक्त श्वास आती है।
12.	शरीर का तापमान सामान्य रहता है।	तापमान सामान्य से अधिक या कम हो सकता है।
13.	नाड़ी की गति सामान्य होती है।	नाड़ी की गति सामान्य से अधिक या कम हो जाती है।
14.	पशु के उठने–बैठने, चलने व चरने की क्रिया सामान्य होती है।	उठने–बैठने में तकलीफ होती है। पशु लंगड़ाता है।
15.	पशु की आवाज सामान्य रहती है।	आवाज में परिवर्तन आ जाता है।
16.	पशु कान, पूंछ तथा सिर हिलाते रहते हैं एवं सिर ऊँचा उठाये रखते हैं।	कान, पूँछ तथा सिर कम हिलाते हैं या बिल्कुल नहीं हिलाते। सिर नीचे की ओर होता है।
17.	प्राकृतिक द्वार (Natural orifies) जैसे जननेन्द्रियों से किसी प्रकार का स्राव नहीं आता। परन्तु मादा पशु के पाले (Heat) में आने पर स्राव आता है।	जननेन्द्रियों में मवाद जैसा स्राव या खून आता है।
18.	पशु के स्वभाव में सामान्य से भिन्नता नहीं होती।	पशु का स्वभाव सामान्य नहीं रहता।

देकर लेना चाहिए वरना उस पशु का शारीरिक तापमान बढ़ा हुआ मिलेगा।

सांसर्गिक व संक्रामक रोगों में शरीर का तापमान बढ़ जाता है। गर्भावस्था एवं तरूण अवस्था में शरीर का तापमान सामान्य से एक डिग्री फॉरेनहाइट ऊपर चला जाता है। कमजोर व थके हुए पशुओं का तापमान सामान्य से कम होता है। विभिन्न पशुओं का सामान्य औसत तापमान का रेंज औसत वातावरणीय तापमान पर निम्नांकित है।

तालिका 18.1.2

पशुओं का शारीरिक तापमान

पशु की जाति	औसत तापमान	क्रिटिकल तापमान
घोड़ा	38.0°C (100.5°F)	39.0°C (102.0°F)
गाय व भैंस	38.5°C (101.5°F)	39.5°C (103.5°F)
सूअर	39.5°C (103°F)	40.0°C (104°F)
भेड़	39.0°C (102°F)	40.0°C (104.0°F)

उपरोक्त तालिका में विश्राम की दशा में विभिन्न पशुओं का तापमान और क्रिटिकल पॉइंट यानि जिसके ऊपर तापमान बढ़ा हुआ माना जाता है। दिखाया गया है। शरीर के तापमान में सामान्य रूप से थोड़ा बहुत परिवर्तन होता है, परन्तु इसे बीमारी का लक्षण नहीं मानना चाहिए। वातावरण में अत्यधिक आर्द्रता और वातावरण के तापमान तथा कठोर शारीरिक परिश्रम के कारण शरीर का तापमान बढ़ जाता है। अत्यधिक वातावरणीय तापमान के कारण शारीरिक तापमान में 3° F की बढ़ोतरी हो जाती है। रेस के घोड़े का उसके 2 घंटे तक विश्राम देने के बाद तापमान लिया जाता है। अगर कोई पशु ठण्डे वातावरण से लाया जाकर अंदर किसी गर्म वातावरण में रखा जाये तो उसके शरीर का तापमान 2–4 घंटे में क्रिटिकल तापमान से ऊपर चला जायेगा।

नाड़ी (Pulse)–

गाय और भैंस में नाड़ी दर पूँछ के अधर भाग पर धड़क रही मध्य काक्सीजियल धमनी से ज्ञात की जाती है। इसके लिए पूँछ को पृष्ठ भाग हाथ से पकड़ना चाहिए ताकि उँगलियाँ अधर तल में धमनियों को स्पर्श करती हुई लगी रहे। घोड़े में नाड़ी दर चेहरे पर स्थित फेसियल धमनी से ज्ञात की जाती है। भेड़ व बकरी में टांग के ठीक बीच में अंदर की तरफ स्थित फेमोरल धमनी से नाड़ी दर मालूम किया जाता है। सूअर की नाड़ी दर को आसानी से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। नाड़ी दर मालूम करते समय नाड़ी सपिंडनीयता (रिदॅम) अवधि, संख्या, गुण व नियमितता देखनी चाहिए। केवल अनुभव से ही व्यक्ति नाड़ी दर को पूर्ण व्याख्या कर सकता है। नाड़ी दर हृदय गति की दर को परिलक्षित करती है तथा नहीं भी करती है। विश्राम की अवस्था में विभिन्न पशुओं में पाई गई नाड़ी निम्न प्रकार है :–

तालिका 18.1.3

पशुओं की नाड़ी गति

क्रमांक	पशु की प्रजाति	नाड़ी गति प्रतिमिनट
1.	गौ वंशीय पशु	40–50
2.	महिष (भैंस)वंशीय पशु	40–45
3.	भेड़	70–80
4.	बकरी	70–80
5.	ऊँट	28–32
6.	घोड़ा	32–40
7.	सूअर	60–80
8.	कुक्कुट	200–400

श्वसन (Respiration)–

श्वसन वक्र के तीन भाग होते हैं और इन तीन भागों की अवधि बराबर होती है। ये तीन भाग हैं :–

1. उच्छवास, 2. निष्वास तथा 3. विश्राम। इनमें से किसी भी एक भाग की अवधि में अगर परिवर्तन हो जाता है तो सभी भागों की सपिंडनीयता (रिदॅम) में असमानता आ जाती है। उच्छवास के समय में बढ़ोत्तरी फेफड़े के ठीक से न सिकुड़ने का लक्षण है। लगभग सभी फेफड़ों की बीमारियों में श्वसन चक्र से विश्राम का भाग अनुपस्थित रहता है, जिसमें श्वसन दर बढ़ जाती है, अत्यधिक परिश्रम, दौड़ इत्यादि में भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन को नापने के लिए हथेली को नाक के सामने रखकर श्वसन दर मापी जाती है। दर मापने के लिए उच्छवासों को गिना जाता है।

श्वसन नापने की दूसरी विधि यह है कि श्वसन दर पशु की कोख को उठने और गिरने को गिन कर बताई जाती है। इसमें भी कोख (Flank) का उठना गिनते हैं या गिरना गिनते हैं।

तालिका 18.1.4

क्रमांक	पशुओं की जाति	श्वसन गति प्रतिमिनट
1.	गौ वंशीय पशु	20–25
2.	महिष (भैंस) वंशीय पशु	16–18
3.	भेड़	12–20
4.	बकरी	12–20
5.	ऊँट	05–07 (दोपहर में तेज)
6.	घोड़ा	08–16
7.	सूअर	08–18
8.	कुक्कुट	15–30

18.2 सामान्य व्याधियों की पहचान एवं उपचार

(i) बीमारियों का वर्गीकरण

पशुओं में जो विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होती हैं उनमें से कुछ बीमारियों को पशु के खानपान एवं अन्य बातों पर नियन्त्रण करके रोका जा सकता है या ठीक किया जा सकता है। जैसे – बदहजमी, जुकाम इत्यादि। लेकिन कुछ रोग ऐसे होते हैं जो पशुओं में अचानक होते हैं और इनका प्रकोप भी अधिक भयानक होता है, जैसे– ऐन्थ्रेक्स, गलघोटू, चेचक इत्यादि।

पशुओं में होने वाली बीमारियों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया गया है :–

(अ) रोग के कारक के आधार पर।

(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर।

(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर।

(द) रोग विभाजन के आधार पर।

(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर।

(अ) रोग के कारक के आधार पर – इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जिनका कारक निश्चित होता है। इनको तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) संसर्ग रोग (Contagious Disease) – इन्हें छूत की बीमारी भी कहते है। इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जो रोग ग्रस्त पशु के स्वस्थ पशु के सम्पर्क में आने से स्वस्थ पशुओं में भी फैल जाता है। जैसे–पशु प्लेग, गलघोटू इत्यादि। छूत से फैलने वाले (संसर्ग रोग) सभी रोग संक्रामक होते हैं, लेकिन सभी संक्रामक रोग छूत से फैलने वाले नहीं होते हैं।

(2) संक्रामक रोग (Infectious Disease) – इस वर्ग के रोग जीवाणु (Bacteria), वायरस (Virus), परजीवी (Parasites) तथा प्रोटोजोआ (Protozoa) द्वारा फैलते हैं। यह रोग, रोगग्रस्त पशुओं के सम्पर्क में रहने वाली वस्तुओं के द्वारा भी स्वस्थ पशुओं में पहुँच जाते हैं।

(3) अन्य रोग (Others) – अन्य रोगों में पोषक तत्वों की कमी से (जैसे–कैल्सियम की कमी से अस्थि वक्रता) होने वाले रोग, चयापचय जन्य रोग (जैसे– कीटोसिस तथा दुग्ध ज्वर) एलर्जिक रोग (जैसे चर्मरोग) तथा विषाक्तता (सायनाइड विषाक्तता) आदि रोग आते हैं।

(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को दो वर्गों में बाँटा गया है :–

(1) स्थानीय रोग (Local Desease) – वे रोग जो एक समय में पशु के एक खास भाग को ही प्रभावित करते हैं। जैसे– होर्निया, थनैला, फोड़ा इत्यादि।

(2) साधारण रोग (General Disease) – इस वर्ग के रोग पशु शरीर के विभिन्न भागों तथ कभी–कभी पूर्ण शरीर को ही प्रभावित करते हैं। जैसे–इन्फ्लूएंजा बुखार।

(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को चार भागों में बाँटा गया है :–

(1) अति उग्र रोग (Per Acute Disease) : ऐसे रोग जो पशुओं पर अचानक आक्रमण करते हैं इनके लक्षण भी भली प्रकार प्रकट नहीं हो पाते और पशु यकायक मरने लगते हैं। जैसे भेड़ों में ऐन्थ्रेक्स रोग।

(2) उग्र रोग (Acute Disease) : ऐसे रोग जो अचानक अधिक तेजी से आते हैं और थोड़ी देर में समाप्त हो जाते हैं। जैसे गलघोटू, लंगड़ी रोग।

(3) उप उग्ररोग (Sub Acute Disease) : इनमें वे सभी रोग आते हैं जो अचनानक तेजी से आते हैं और इनकी अवधि अधिक लम्बी होती है। जैसे खुरपका रोग।

(4) चिरकालीन रोग (Chronic Disease) : इनमें वे रोग आते हैं जो पशु शरीर में धीरे–धीरे दिखाई देते हैं तथा अधिक समय में समाप्त होते हैं। जैसे क्षय रोग इत्यादि।

(द) रोग विभाजन के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को 6 भागों में बाँटा गया है :–

(1) पशु महामारी (Epizootic) : इस प्रकार के रोग एक साथ बड़े क्षेत्र में पशुओं में फैलते हैं और इनके लक्षण भी सभी पशुओं में एक समान ही होते हैं।

(2) स्थानिक मारी रोग (Enzootic) : इस प्रकार के रोग वे माने जाते हैं जो पशुओं की कुछ विशेष नस्लों अथवा

जातियों को ही प्रभावित करते हैं।

(3) विदेशज रोग (Exotic) : ऐसे रोग जो विदेशी नस्ल खरीदते समय इनके साथ देश में आ जाते है। जैसे दक्षिण अफ्रीकी अश्व रोग।

(4) विकीर्ण रोग (Sporadic) : यह रोग यंत्र–तांत्रिक रोग भी कहलाता है। यह रोग कभी–कभी पशुओं में दिखाई देता है, जैसे–पागलपन (Rabies)।

(5) पैन्जूटिक रोग (Penzootic) : इस प्रकार के रोग प्रायः वह होते हैं, जो एक साथ किसी राष्ट्र में पशुओं की विभिन्न जातियों को प्रभावित करते हैं।

(6) देशी रोग (Indigenous) : इस प्रकार के रोग एक राष्ट्र के जन्मजात रोग होते हैं, ये आरम्भ से ही पशुओं में होते हैं।

(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर : इस वर्ग को तीन भागों में बाँटा गया है।

(1) पैतृक रोग (Hereditary) : वे रोग जो जो माता–पिता से संतान में आते हैं, जैसे मिर्गी तथा हिमोफीलिया।

(2) जन्मजात रोग (Congenital) : वे रोग जो बच्चों में गर्भकाल से ही माँ से लग जाते हैं। जैसे क्षय रोग।

(3) अर्जित रोग (Acquired) : वह रोग जो बच्चों में जन्म लेने के बाद उनके जीवनकाल में वातावरण से लग जाते हैं।

(ii) सामान्य व्याधियाँ

पशुओं में कई प्रकार की व्याधियाँ होती हैं। कुछ ऐसी व्याधियाँ हैं जैसे – घाव, मोच, दाह, कब्ज, आफरा, अतिसार, खुजली एवं भोजन विषाक्तता आदि जिसका पशुपालक स्वयं इनके लक्षणों को पहचानकर प्राथमिक उपचार कर सकता है।

1. घाव (Wound)

घाव को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:–

i) खरोंच (Abration) :– यह किसी वस्तु से रगड़ खाने, टकराने, कटीली झाड़ियों से तारबंदी से रगड़ खाने से या गिरने से होते हैं। इसमें त्वचा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। खरोंच घाव बहुत ही दर्द युक्त होता है एवं कई बार ऊत्तकों के बीच द्रव्य इकट्ठा हो जाता है जिसमें घाव में सूजन पैदा हो जाती है।

उपचार (Treatment) :– यदि घाव मामूली सी खरोंच की स्थिति में हो तो 0.1% लाल दवा (पोटैशियम परमैंग्नेट) से बने पानी के घोल से यो 1% फिनायल युक्त पानी में रुई भिगोकर घाव को धोवें उसके बाद टिंचर आयोडिन को रुई में भिगोकर घाव पर लगावें।

ii) खुले घाव (Open wound) :– शरीर के किसी भाग पर चोट लगने से ऊत्तक नष्ट हो जाने एवं रक्त वाहिनियों के फट जाने से होता है। इस प्रकार के घाव दुर्घटना से, तेज धारदार या नुकीले औजार से, किसी पदार्थ से टकराने से हो जाता है। ताजे घाव से खून निकलता है यदि इस प्रकार के घाव की ठीक तरह से देखभाल न की जाए तो घाव सड़ जाता है। घाव पर मक्खियाँ बैठने पर उसमें कीड़े (maggot) भी पड़ जाते हैं। अतः ताजे घाव का शीघ्र उपचार करने पर जल्द भर जाता है।

उपचार (Treatment) :– सर्वप्रथम घाव के आस–पास के बाल काट दें। लाल दवा एक प्रतिशत के घोल से धोकर साफ कर लेना चाहिए। यदि घाव से खून निकल रहा हो तो टिंक्चर बेन्जाइन का रुई का फाहा रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। यदि घाव ऐसे स्थान पर हो जहाँ पट्टी बाँधना सम्भव न हो तो वहाँ कोई एन्टीसैप्टिक मल्हम घाव के ऊपर लगा देना चाहिए।

iii) पुराना घाव (Old wound) :–यदि ताजे घाव का समय पर उपचार नहीं किया जाये तो घाव सड़ने लगता है। इस प्रकार का घाव पुराना घाव कहलाता है। इस प्रकार के घाव में मवाद (Pus) पड़ जाती है एवं घाव से दुर्गंध आती है। मक्खियों के बैठने से घाव में कीड़े पड़ जाते हैं।

उपचार (Treatment) :– इस प्रकार के घाव को लाल दवा के एक प्रतिशत घोल से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से घाव में पड़ी मवाद, मृत ऊत्तक आदि को घाव से निकाल दें। यदि घाव में कीड़े पड़ गए हों तो तारपिन तेल का रूई का फाहा 5–10 मिनट तक लगाकर रखें जिससे घाव के भीतर घुसे कीड़े घाव की सतह पर आ जायें उसके बाद रूई की फाहा हटाकर बाहर निकाल देवें। घाव पर एन्टिसैप्टिक मल्हम या टिंक्चर आयोडीन लगावें। जब तक घाव पूरी तरह न भरे नियमित रूप ये घाव पर दवा लगाएं एवं पट्टी बाँधें जिससे घाव को धूल एवं मक्खियों से बचाया जा सके।

शरीर के कई ऐसे नाजुक भाग हैं जैसे आंख, कान, थन, योनि, गुदा द्वार आदि के घावों का उपचार ऊपर वर्णित उपचार विधि से करने पर लाभ की जगह नुकसान

होगा। नाजुक भागों के घावों के उपचार हेतु एक्रीफ्लेवीन लोशन, मरक्यूरोक्रोम आदि दवा लगानी चाहिए।

2. दाह (Burn)

पशु आवास में आग लग जाने से गर्म पानी से या रासायनिक घोल (तेजाब) से जल जाता है। जिससे फफोले पड़ जाते हैं एवं फफोलों के फूटने पर उसमें से द्रव्य निकलता है एवं घाव हो जाता है।

उपचार (Treatment) :– जले हुए भाग पर चूने का पानी, अलसी का तेल (यदि अलसी का तेल उपलबध नहीं हो तो मीठा तेल) बराबर मात्रा में मिलाकर लगाने से काफी आराम मिलता है। यदि घाव में मवाद या तरल सा पदार्थ निकलता हो तो लाल दवा के हल्के गर्म घोल से साफ करके जिंक ऑक्साइड दिन में दो–तीन बार लगाना चाहिए। सिरका, शहद या पैराफीन लगाने से भी दर्द कम होता है। तेजाब से जल जाने पर एक प्रतिशत कपड़े धोने का सोडे का घोल लगाएं। यदि पशु के शरीर का काफी भाग जल गया हो तो तुरंत पशु चिकित्सक से इलाज कराएं।

3. मोच (Sprain)

यह आमतौर पर पशु के फिसलने से, कूदने से, पशु के आपस में लड़ने पर चोट लगने से मोच आती है। मोच साधारणतया शरीर के जोड़ों पर विशेषकर टांग में आती है। इसमें मांसपेशियाँ, स्नायु (Ligaments) या टेन्डन (Tandens) पर चोट आती है या ये अपने स्थान पर से हट जाते हैं। मोच के स्थान पर सूजन आती है जो गर्म एवं दर्द युक्त होती है। यदि मोच पशु के टागों में है तो पशु लंगड़ाकर चलता है।

उपचार (Treatment) :– यदि मोच ताजी एवं गर्म है तो उस जगह पर ठंडा पानी डालें या बर्फ से सेक करें। पुरानी मोच में नमक या बोरिक एसिड मिले गुनगुने पानी से सेक करें। पशु को सूजन एवं दर्द कम करने वाली (Anti inflamatory and Analgesic) दवा लगाएं।

4. पेचिस (Dysentery)

पर्यायवाची (Synonyms)

खूनी दस्त, खूनीपेचिस, लाल पेचिस

यह रोग एक प्रजीवा (Protozoa) द्वारा फैलने वाली रोग है, जो कि गर्मी के दिनों में अधिकतर फैलता है। इस रोग का जीवाणु बड़ी आँत में रहता है और पशु में दस्त उत्पन्न करता है। रोगी पशु के दस्त में अण्डे की तरह की छोटी–छोटी कोकसीडिया (Coccidia) निकलती हैं, जोकि बिना सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखी जा सकती हे। यह रोग पशुओं तथा कुक्कुट में छोटे बच्चों में ज्यादा सघन जनसंख्या हो फैलता है। बड़े पशुओं में इसका आक्रमण नहीं होता हैं यह बीमारी गाय, भैंस तथा कुक्कुट के छोटे बच्चों में फैलती है।

बीमारी का कारण (Etiology)

यह प्राजीव परजीवी– *कोकसीडियम जरनाई* या *इमेरिया जरनाई* (Protozoan parasite- *coccidium zerni* or *Emeria zerni*) के द्वारा फैलता है। यह परजीवी गोबर में पाया जाता है, जो कि बड़ी आँत पर आक्रमण करता है। इन जीवाणुओं की स्पोरोजोइट (Sporozoite) अवस्था छूत फैलाने का कार्य करती है।

लक्षण (Symptoms)

बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत पतला गोबर होता है, जिसमें रक्त मिला होता है। एक दो दिन बाद और अधिक खून आने लगता है। बहुत जोर लगाने पर ऐंठन के साथ दस्त होता है। कभी–कभी जोर लगाने से रैक्टम भी बाहर आ जाता है। पशु में बेचैनी एवं प्यास बढ़ जाती है, भूख कम हो जाती है परन्तु इसमें तापक्रम नहीं बढ़ता है। इसमें रोगी 5–15 % मर जाते हैं।

निदान (Diagnosis)

(1) लक्षणानुसार : बीमारी के उपरोक्त लक्षण देखकर निदान (Diagnosis) की जा सकती है।

(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा (Microscopic) : गोबर का स्मीयर बनाकर परीक्षण करने पर जीवाणु देखे जा सकते हैं।

(3) पोस्टमार्टम : मरे हुए शव की चीर फाड़ करने से आँतें सूजी हुई कई गुना मोटी दिखाई देती हैं। आँतों की श्लेष्म झिल्लियों पर रक्त के धब्बे मिलते हैं। गुदा की श्लेष्म झिल्ली (Mucous membrane) पीली पड़ जाती है।

चिकित्सा (Treatment)

(1) सौंफ, जीरा, बेलगिरी सबकी एक–एक तोला मात्रा लेकर चावल के एक किलो मांड में देनी चाहिए।

(2) क्लोरोडीन 5 ग्राम, फिनोल 750 मिलीग्राम, दलिया 400 ग्राम सबको मिलाकर दिन में 2–3 बार देना चाहिए।

(3) सल्फा ड्रग्स जैसे सल्फागोनेडीन, सल्फामैजेथीन की गोलियाँ या सल्फामैजाथीन सोडियम 33.3% के घोल की इन्ट्रावेनस सुई लगाने से लाभ होता है।

(4) ऐंठन तथा दर्द को कम करने के लिए गुदा में 1% फिटकरी का घोल पिचकारी द्वारा चढ़ाना चाहिए।

(5) दस्तों के कारण पशु के शरीर से काफी पानी निकल जाता है, अतः पशु का डीहाइड्रेशन रोकने के लिए 1000–2000 सैलाइन घोल जिसमें ग्लूकोज हो इन्ट्रावेनस सुई देनी चाहिए।

(6) नक्सवोम 30 – गोबर कम उसके साथ आंव अधिक होने पर दें।

(7) एलोज 30 – पेट में गड़गड़ाहट, आधो–वायु के साथ मल त्याग उसमें आँव तथा खून का परिमाण अधिक होनेपर दें।

(8) मर्क्यूरिसकार 200 – काले, मटमैले, आँवयुक्त कोलतार जैसे दस्त हों तो इस औषधि को दें।

(9) मर्क सोल 200 – खून का भाग कम हो, पेट में मरोड़ अधिक हो तब इस दवाई का प्रयोग करें।

रोकथाम (Prevention and Control)

पशु गृह तथा अन्य जगह से कोकसीडिया नष्ट करने के लिए अमोनिया घोल का छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे सब उपचार जोकि संक्रामक रोगों के बचाव के लिए बताए गए हैं, अपनाने चाहिए।

5. आफरा (Tympanites)

पर्यायवाची (Synonyms)

आफरा, पेट फूलना, अफरा (Bloat, Tympany)

पेट की बीमारियों में यह रोग अधिकतर होता है। गीला हरा चारा, सड़ी गली चीजें खाने से पशु के पेट में गैस भर जाती है, जिससे कि पशु का पेटफूल जाता है और बांई कोख पर अंगुली मारने पर ढोल की सी आवाज होती है। यह रोग पशु को एक दम या धीरे–धीरे भी होता है। पेट में गैस भरने के कारण फेफड़ों पर भारीदबाव पड़ता है, जिससे कि सांस लेने में इतनी कठिनाई होती है कभी–कभी तो पशु मर भी जाता है।

कारण (Causes)

पशुओं को सड़ी–गली चीजें, बदबूदार पानी देने, वर्षा में नए उगे हुए जहरीले चारों का खाना, गर्मी एवं वर्षा में ज्यादा देर तक भीगे दाने खाना, पाचन क्रिया का खराब होना, खाने की नली में रोक होना, पशु को चारा एवं पानी पिलाकर काम लेना या भगाना और एक ही करवट से काफी देर तकलेटे रहना आदि–आदि इस बीमारी के कारण हैं।

लक्षण (Symptoms)

रोग का मुख्य लक्षण पशु की पेट में गैस का भरना है। जिसके कारण बांयी कोख अधिक दांयी कम फूलती है। कोख को यदि दबाया जावे तो वह दबती और पीटने पर ढोल की तरह आवाज करती है। पशु बहुत ही बैचेन हो जाता है। जल्दी–जल्दी उठता–बैठता है। उसके मुँह से लार गिरती है, जीभ बाहर निकल आती है। सांस लेने में बहुत कठिनाई होती है। मुँह को आगे को करके सांस लेता है। बाद में सांस मुँह से लेने लगता है। गोबर एवं पेशाब बन्द हो जाता है। अन्त में पशु जमीन पर बैठकर लम्बी सांस लेता है और पशु मर जाता है।

निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षण को देखकर रोग की पहचान आसानी से की जा सकती है।

चिकित्सा (Treatment)

(1) पशु को तुरन्त, हींग 11.5 ग्राम, तारपीन का तेल 58 ग्राम, मीठा या अलसी का तेल 650 ग्राम।

इन सबको मिलाकर पिलाओ और पशुओ को टहलाओं। दोनों कोखों पर दोनों तरफ आगे पीछे एवं नीचे की तरफ मालिश करें।

(2) काला नमक 23 ग्राम, अजवायन 23 ग्राम, मदार के पत्ते 58 ग्राम। सबको पीसकर पानी के साथ दो।

(3) उसके बाद एक जुलाब दो जिसमें, नमक 200 ग्राम, एलवा 18 ग्राम, सौंठ 23 ग्ग्रम, शीरा 220 ग्राम। इन सबको एक किलो पानी में दें।

(4) इसके बाद, चिरायता 11.5 ग्राम, काला नमक 23 ग्राम, नौसादर 11.5 ग्राम, सौंठ 11.5 ग्राम। इन सबको आधा किलो पानी में दें।

(5) जब किसी भी तरह लाभ नजर न आवे तो अन्त में बांयी कोख के बीचों बीच ट्रोकार कैनुला घुसा कर कैनुला की मदद से गैस निकालनी चाहिए।

(6) किण्वीकरण रोकने के लिए तारपीन का तेल कैनुला के छिद्र से ही रियुमन में डाल देना चाहिए। ऐसा करने से गैस बनना बन्द हो जाती है।

(7) **लाइकोपोडियम 200** – पशु के दांयी तरफ के आफरे की यह उत्तम दवा है, इसमें पेट में बहुत वायु बनती है, खाने के थोड़ी देर बाद पेट फूलने लगता है।

(8) **चाइना 200** – यदि पूरे पेट में आफरा है, पशु कमजोर है तो इसका प्रयोग करें।

(9) **नक्सवोम 30** – पशु बार–बार गोबर करने का प्रयास करता हो तो इसका प्रयोग करें।

6. कब्ज (Constipation)

यह भी पशुओं का आम रोग है। इसमें पशु का चारा ठीक प्रकार से नहीं पचता है व उसे कब्ज हो जाता है। पशु को गोबर नहीं आता और जो आता है वह सख्त बहुत होता है।

कारण (Causes)

सूखा भूसा या चारा देकर काफी देर तक पानी न पिलाना, पहले (रूमेन) एवं तीसरे पेट (ओमेजम) में चारे का फंस जाना और काम न लिया जाना आदि, कारणों से यह रोग हो जाता है।

लक्षण (Symptoms)

पशु को बहुत सख्त गोबर होना, गोबर थोड़ा–थोड़ा एवं आँव लिपटा होना, भूख का कम होना, पेशाब का ज्यादा होना, मुंह में काटों का बढ़ना और पशु का सुस्त रहना आदि रोग के लक्षण हैं।

निदान (Diagnosis)

लक्षणों को देखकर रोग की पहचान हो जाती है।

चिकित्सा (Treatment)

अलसी, अरण्डी और तिल का तेल बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर 600 ग्राम की मात्रा तैयार करके उसमें 80/80 ग्राम सौंठ मिलाकर पशु को एक खुराक में दें।

अथवा

खाने का नमक 150 ग्राम, नौसादर 20 ग्राम, सौंठ 40 ग्राम, शीरा 150 ग्राम, गंधक 20 ग्राम, ऐल्वा 23 ग्राम, गर्म पानी 1 किलो में सबको मिलाकर पिलाओं। इसके बाद अगले दिन से काला नमक 23 ग्राम, सौंफ 23 ग्राम, अजवायन 11.5 ग्राम, चिरायता 11.5 ग्राम, कुचला 100 मिलीग्राम, पान 320 ग्राम, सबको मिलाकर सुबह पिलाओ। खाने में भीगी हुई चोकर हरी–हरी घास और दूध पिलाओ।

लक्षणों के अनुसार नक्सवोम 30, प्लमबम 200, एल्यूमीना एवं पल्स आदि औषधियों का प्रयोग करें।

7. अतिसार (Diarrhoea)

पर्यायवाची (Synonyms)

अतिसार, दस्त, पेट चलना,

इस बीमारी में पशु पानी की तरह पतला गोबर करता है। दस्त लगने के कारण पशु कमजोर हो जाता है। यदि चिकित्सा सही समय पर न की जाये तो मर भी सकता है।

कारण (Causes)

खराब चारे, दाने एवं पानी का देना, आँतों में खरास का होना, सूखे चारे के बाद कच्चे हरे चारों का देना, पेट में कीड़ों का होना, ज्यादा गर्मी एवं सर्दी का लगना आदि। इसके अतिरिक्त अन्य संक्रामक रोगों के जीवाणुओं के प्रकोप के कारण भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

लक्षण (Symptoms)

पशु सुस्त हो जाता है, जुगाली कम या बिल्कुल बन्द कर देता है। खाना पीना बन्द कर देता है। गोबर बहुत पतला आता है, जिससे कि पिछले पैर गोबर में सने रहते हैं। प्यास बहुत बढ़ जाती है। पशु बहुत ही कमजोर होने लगता है। त्वचा सूखी प्रतीत होती है। बाँधने के स्थान पर गोबर के छींटे दूर–दूर तक पड़े मिलते हैं।

निदान (Diagnosis)

उपरोक्त लक्षणों को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है।

चिकित्सा (Treatment)

पहले बीमारी के कारण को जानकर दूर करो। यदि रोग किसी संक्रामक बीमारी के कारण हो तो पहले उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि रोग खराब चारे या आंतों में खरास होने के कारण हो तो पशु को अलसी या तिल या अरण्डी का तेल 160–220 ग्राम और उसमें 300 मिलीग्राम अफीम मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे आँतों की खरास खत्म हो जावेगी। पानी के बजाय चावलों के माँड में नमक मिलाकर पिलाओ।

(1) इसके बाद अगले दिन दस्त रोकने के लिए खड़िया मिट्टी 58 ग्राम, कत्था23 ग्राम, अंफीम 300 मिलीग्राम, सौंठ 15 ग्राम, चावल का माँड 750 ग्राम में सबको मिलाकर दिन में दो बार पिलाओ।

(2) पकी प्याज 40 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 500 ग्राम।

(3) जामन का अर्क 80 ग्राम, सौंफ 15 ग्राम, गोंद बबूल 80/80 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(4) आम की गुठली 40 ग्राम, सौंफ 20 ग्राम, दाल चीनी 11.50 ग्राम, बेल गिरी 40 ग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(5) अजवायन 23 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, सौंफ 35 ग्राम, मांड 320 ग्राम।

अगर इनसे भी आराम न हो तो पशु को अल्फागोनाडीन या सल्फामैजाथीन की गोली दी जा सकती है।

(6) **पोडाफाइलम 200**– पशु पतले दस्त बिना जोर लगाए करता हो।

(7) **सल्फर**– केवल दिन के समय छेरा लगता हो।

(8) **नक्स 30**– यदि बार–बार छेरा लगता हो।

8. खुजली (Mange)

यह बीमारी एक छूतदार है जो कि एक पशु से दूसरे पशु में शीघ्रतापूर्वक पहुँचती है। यह रोग खुजली के कीटाणु (Mange Mites) द्वारा फैलता है। यह रोग सभी पशुओं तथा मनुष्यों में फैलता है। इस रोग के परजीवी (Parasite) त्वचा में 1/8″–1/2″ के फांसले पर छेद बना देते हैं और इनमें अण्डे दे देते हैं। रोग उत्पन्न होने पर इन स्थानों पर फुंसी बन जाती है। इसके बाद इन भागों में तेज खुजली होती है। खुजाने पर इनमें मवाद पड़ जाती है।

कारण (Causes)

यह चार प्रकार के कीटाणुओं द्वारा फैलता है, जो निम्न है:–

(1) Psoroptie communis

(2) Chorioptes symbiotes

(3) Demodex folliculorum.

(4) Sarcoptes scabie.

इनमें सबसे अन्तिम *(Sarcoptes scabie)* कम बीमारी फैलती है, परन्तु फैलने पर सबसे भयंकर होती है, क्योंकि इस बीमारी के कीटाणु त्वचा में घुस जाते हैं, अतः इन बाहरी दवाओं का प्रभाव नहीं होता है।

लक्षण (Symptoms)

सभी पशुओं में इस बीमारी के लक्षण एक ही समान होते हैं। यह बीमारी चेहरे, होंठ और पैरों से आरम्भ होती है और सिर गर्दन और टांट (Hump) तक पहुँच जाती है। पूँछ की जड़ पर भी यह रोग खूब होता है। इस बीमारी में पशु को खाज बहुत जोर से होती है। खुरों से सिर को खुजलाता है। आस–पास के पेड़ या दीवार से गर्दन को या दूसरे रोग ग्रस्त भाग को जोर से रगड़ता है। रोग ग्रस्त भाग के बाल गिर जाते हैं, त्वचा सूज कर मोटी होने लगती है। खुजली दिन की अपेक्षा रात को ज्यादा होती है। खुजली के अधिक होने पर उस स्थान पर खुरंड बन जाती है और फिर खुजाने पर उस स्थान से पीप सा निकलने लगता है। गीली खुजली में छाले पड़–पड़ कर फूट जाते हैं और पशु को बहुत दर्द होता है।

निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षणों को देखकर रोग का निदान किया जा सकता है।

(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा– सूक्ष्मदर्शी द्वारा इसके बैक्टीरिया देखे जा सकते हैं।

कारण (Causes)

खुजली वाले भाग को गर्म पानी एवं साबुन से धोकर 400 ग्राम पानी में 5 ग्राम दारचिकना मिलाकर लगाना चाहिए। जब घाव सूख जाये तो गन्धक 40 ग्राम, जवाखार 23 ग्राम, शीशम की लकड़ी का तेल 23 ग्राम, बकरे की चर्बी या कड़वा तेल या नीम का तेल 250 ग्राम में मिलाकर तीसरे दिन लगाओ।

मिट्टी का तेल 1 भाग, 5 भाग दूध में मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

खाने में गन्धक 11.50 ग्राम, भुना हुआ सुहागा 11.50 ग्राम मिलाकर देना चाहिए या मैगसल्फ तथा गन्धक मिलाकर खिलाने चाहिए।

इसके अतिरिक्त लगाने वाली दवायें :–

गन्धक 28 ग्राम, तारपीन का तेल 28 ग्राम, पोटाशवाईकार्व 7 ग्राम सरसों का तेल 220 ग्राम। सबको मिलाकर खुजली वाले भाग पर लगाओ।

ऐसकेवयोल इमलशन का प्रयोग भी कर सकते हैं।

सल्फर 200 – यदि अधिक खुजली लगती हो, छाले के बाहर लाल रिंग हो तो इसका प्रयोग करें।

सीपिया 200 – यदि पूरे छाले पीलापन लिये हों, बहुत खुजली लगती हो और पशु बार–बार पूँछ चलाता हो तो इसका सेवन करायें।

रसटक्स 200 – यदि जले हुए के समान बड़े–बड़े छाले हों और बहुत खुजली लगती हो तो इसका प्रयोग करें।

9. भोजन विषाक्तता

प्रायः सभी पशु आहारों में लाभदायक तत्व पाये जाते हैं, लेकिन इन पशु आहारों में कुछ हानिकारक पदार्थ भी पाये जाते हैं। जिससे पशु आहार विषैला हो जाता है। जिनके प्रमुख उदाहरण यहाँ दिये गये हैं:–

1. सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (Cyanogenetic Glucosides) : ये कुछ ऐसे पदार्थ हैं। जैसे – ज्वार में धुरीन (Dhurrin) जिनका कुछ इन्जाइम द्वारा हाड्रोलायसिस होने पर हाइड्रोसायनिक अम्ल बनता है। यह हाइड्रोसायनिक अम्ल सूक्ष्म मात्रा में ही बहुत हानिकारक होता है। अगर हरी ज्वार में धुरीन हो तो आहार में ज्वार की मात्रा 3 % से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2. गोसीपोल (Gossipol) : यह बिनौले (Cotton Seed) या बिनौले की खल में पाया जाता है। यह ऐरोमेटिक एल्डीहाइड होता है। मुर्गियों के आहार में 0.015 प्रतिशत मात्रा भी हानिकारक होती है। बिनौले को उबालने पर इसका जहरीला प्रभाव कम हो जाता है।

3. अफ्लाटोक्सिन (Aflatoxin) : कुछ पशु आहार जैसे मूँगफली की खल (Groundnut Cake) आदि में *Aspergillus flavis* जैसी फफूँदी (Moulds) के लगने से सड़ने लगती है, जिससे कुछ टोक्सिन (Toxin) जैसे अफ्लाटोक्सिन बन जाते हैं। जो पशुओं के लिए विषैले सिद्ध होते हैं।

4. कीटनाशी (Insectisides) : विभिन्न फसलों पर कीट नियंत्रण हेतु कई कीटनाशी (जैसे–मिथाइल पैराथियान, इण्डोसल्फान) छिड़के जाते हैं। जिनका प्रभाव फसल की कटाई के बाद भी बना रहता है। जब पशु इस चारे को खाते हैं तो ये कीटनाशी उन्हें हानिकारक सिद्ध होते हैं।

18.3 परजीवी – जूं एवं किलनी (Parasite- Lice & Tick) –

परजीवी विज्ञान जीव विज्ञान की एक मुख्य शाखा है जिसके अन्तर्गत ऐसे जन्तुओं का अध्ययन किया जाता है जो अपने से बड़े आकार के तथा भिन्न समुदाय के जन्तुओं एवं पशुओं पर चयापचयी रूप से आश्रित रहते हैं तथा उनके शरीर के अन्दर विभिन्न भागों एवं तन्तुओं में या शरीर के ऊपर त्वचा पर अपने जीवन की पूर्ण या अपूर्ण अवधि तक रहकर निर्वाह करते हैं तथा विकसित होते हैं। व्यापक तौर पर परजीवी शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जन्तु ही नहीं वरन कुछ वनस्पति जीव भी आते हैं। साधारणतया प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जन्तु या तो पृथ्वी पर या पानी में या हवा में या मिश्रित रूप से इन वातावरण में रहते हैं। इसके विपरीत कुछ जन्तु अन्य जन्तुओं पर आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं जिन्हें 'परजीवी' (Parasite) कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के जन्तु एक–दूसरे के साथ, परजीवी न होते हुए भी, भिन्न–भिन्न प्रकार के सहचर्य में देख सकते हैं।

फीताकृमि (Tape worm) –

ये पर्णकृमि के समान चपटे होते हैं। परन्तु खण्डीय व फीते के समान विभिन्न लम्बाई के होते हैं। इनकी जनन क्रिया उभयलिंगी (Hermaphrodite) है तथा नर व मादा के जनन अंग प्रत्येक खंड में होते हैं। प्रत्येक फीता कृमि के आरम्भ में एक सिर होता है जिसे स्कोलेक्स (Scolex) कहते हैं। यह अंग लगभग गोल होता है। साधारणतया इस पर चार चूशण (Suckers) होते हैं या इनका कई प्रकार का रूपान्तर होता है। (कुछ फीताकृमि के चूशण पर कांटे लगे रहते हैं (Armed suckers) स्कोलेक्स का आगे का कुछ भाग निकला रहता है जिसे रोस्टलेम (Rostellum) कहते हैं।) स्कोलेक्स के पीछे एक छोटा सा अखंडीय भाग होता है जिसे गर्दन (Neck) कहते हैं जिसके पीछे खंड आरम्भ हो जाते हैं जो पहले अपरिपक्व अवस्था में फिर परिपक्व अवस्था में होते हैं। पीछे के कुछ खंडों में पाचन क्रिया के बाद बने अण्डे होते हैं। ये खण्ड टूट–टूट कर मल के साथ बाहर आ जाते हैं। अण्डों को संक्रामक अवस्था में पहुँचाने के लिए साधारणतया मध्यस्थ पोषक की आवश्यकता पड़ती है। अतः विभिन्न वंशों के फीताकृमियों की लारवा अवस्था स्पष्ट रूप से भिन्न होती है जो अनेक प्रकार के मध्यस्थ पोषक में पनपती है।

उपचार –

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें।

अलवैण्डाजोल संस्पैशन भैंस, बैल व घोड़े के लिए 20 मि. ली. प्रति 100 किलो शरीर भार तथा भेड़, बकरी के लिए 5 मि.ली., प्रति 25 किलो शरीर भार पर इसके अलावा सैस्टोफीन, आदि भी दे सकते हैं।

ऐस्केरिस (Ascaris) –

भारतवर्ष में यह प्रमुख रूप से पाया जाता है। इस परजीवी का प्रकोप गर्मियों में 3 महीने तक के बछड़ों में अधिक पाया जाता है। भैंस के बछड़े गाय के बछड़ों की तुलना में अधिक सुग्राही होते हैं।

जीवनचक्र की मुख्य अवस्थाएँ एवं संक्रमण –

गोलकृमि पशुओं की आँत में रहते हैं। इनके अण्डे मल के साथ शरीर के बाहर आते हैं। ये अण्डे यथोचित समय में संक्रामक अवस्था में पहुंच जाते हैं तथा इनके अन्दर लार्वा की द्वितीय अवस्था बन जाती है। पशु द्वारा खा लेने पर ये छोटी आँत में निर्मोकोत्सर्जन (Moulting) करते हैं। यहाँ से ये शरीर के विभिन्न अंगों के ऊत्तकों में (जैसे–यकृत, फुफ्फुस, वृक्क) में पहुंच जाते हैं।इस समय तक इनमें कोई विकास नहीं होता। जिसे प्रसवपूर्व संक्रमण (Prenatal Infection) कहते हैं।

रोगजनकता –

यह मुख्य रूप से तीन महीने की उम्र तक के बछड़ों का परजीवी है। भारी संक्रमण से बछड़ों में अतिसार हो जाता है और शरीर कृशकाय हो जाता है जिसके कारण उन्हें खड़े रहने में भी परेशानी होती है। उसकी श्वांस से सड़े मक्खन जैसी गंध आती है। बछड़ों में न्यूमोनिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। गोलकृमियों की वयस्क अवस्था आँत्रशोध पैदा करती है। भारी संख्या में यह आँत में अवरोध पैदा करते हैं।

लक्षण –

पशुओं में खाने के प्रति अरूचि हो जाती है, शरीर के भार में कमी आ जाती है तथा अतिसार हो जाता है। शरीर में रक्त की कमी हो जाती है तथा छोटी व बड़ी आँत में आंत्रशोध हो जाता है। भेड़ों में पैरों के चारों ओर की त्वचा गल जाती है जिसे पद गलन (Foot rot) कहते हैं। जिससे इन स्थानों पर जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं।

उपचार –

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें जैसे कैरीसाइड, 55–100 मिली ग्राम/किलो शरीर भार के अनुसार इसके अतिरिक्त डेवर्म, पेनाकर, आदि भी दे सकते हैं।

(1) किलनी प्रकोप (Tick infestation)

किलनी बाह्य परजीवी होती है जो पशु के शरीर पर पाई जाती है। यह दो प्रकार की होती है कठोर किलनी व कोमल किलनी। कठोर किलनियों के शरीर पर कवच पाया जाता है जिसका कोमल किलनियों के शरीर पर अभाव होता है।

रोगजनकता तथा पशुओं पर कुप्रभाव :

किलनियाँ संपूर्ण विश्व में पालतू पशुओं पर पाई जाती हैं। संभवतः ही कोई पशु होगा जो इनके कुप्रभाव से बचा होगा। यह अपने परपोशी को अनेक प्रकार से हानि पहुँचाती हैं जिनमें बड़ी मात्रा में रक्त चूसना, दंश द्वारा बेचैनी, अगघात तथा अनेक प्रकार के प्रोटोजोआ, जीवणु, रिकेटसिया तथा विषाणु रोगों को संचारित करना शामिल है।

बड़ी संख्या में पशु का रक्त चूसने से और उनमें बैचेनी पैदा करने से उनमें रक्त की कमी होती है। छोटी आयु के पशुओं का समुचित विकास नहीं होता तथा कार्यशील पशु की क्षमता कम हो जाती है या दूधारू पशुओं में दूध उत्पादन गिर जाता है। कभी–कभी किलनियों के अत्यधिक संक्रमण से छोटी आयु के पशुओं की मृत्यु हो जाती है। परपोशी का रक्त चूसने से त्वचा में सूजन आ जाती है और वहाँ वर्ण बन जाते हैं जिनमें जीवाणु तथा ब्लो–मक्खियाँ आक्रमण करके अनेक रोग उत्पन्न करती हैं।

किलनियों द्वारा संचरित होने वाले प्रमुख रोगों में स्पाटिड ज्वर, क्यू ज्वर (Q-fever) तथा हृदय गल रोग, प्रोटोजोआ जनित रोग जैसे बबेसिओसिस, थिलेरिओसिस व एनाप्लाज्मोसिस मुख्य हैं।

किलनी नियंत्रण –

किलनियों का नियंत्रण उनके जीवनकाल में बाधा उत्पन्न करके किया जाता है। नियंत्रण हेतु निम्न उपाय किये जाते हैं :–

1. कीटनाशी औषधि का प्रयोग कर :

पशु शरीर पर किलनियों को नष्ट करने का यह सबसे अच्छा उपाय है। इसमें विभिन्न किलनी नाशी (Acaricide) औषधियों की उपयुक्त प्रतिशत सांद्रता पशु स्नान, फुहार, धोवन, धूलि तथा धूमकायन (Fogging) के रूप में प्रयोग की जाती है।

विभिन्न कीटनाशी का विवरण आगे तालिका में दिया गया है।

तालिका 18.3.1

किलनी नियंत्रण के कीटनाशी

कीटनाशी की प्रतिशत सांद्रता

क्र.सं. कीटनाशी का नाम	प्रति 5–7 दिन पर उपचार हेतु	प्रति 2–5 दिन पर उपचार हेतु	एक बार में उपचार हेतु
1. आर्सेनिक सल्फाइड	0.16	0.175–0.20	–
2. ब्यूटॉक्स (डेल्टामेथ्रिन)	0.2–0.25	0.2–0.3	0.3
3. निकोटीन	0.1	0.15	–
4. सायथियान	0.05	0.1	–
5. मैलाथियान	0.5–1.0	–	–

2. जिन स्थानों पर किलनियों का प्रकोप अधिक हो वहाँ के आस–पास की वनस्पति, घास आदि को जला देना चाहिए
3. चारागाहों में पशुओं को घूर्णन चराई (Rotational grazing) करानी चाहिए।
4. पशुशाला में विभिन्न कीटनाशी दवाओं का छिड़काव समय–समय पर सावधानी के साथ करते रहना चाहिए।
5. देसी मुर्गिया पालें – ये मुर्गियां इन्हें खाकर सफाया कर देती है।

(2). जूँ प्रकोप (Lice-infestation or Lousiness)

जूँ पशुओं के शरीर पर पाए जाते हैं तथा उनका रक्त व लसिका द्रव्य चूसकर हानि पहुँचाते हैं। पालतु पशुओं में जूँ की निम्न जातियाँ पायी जाती हैं :–

1. हिमेटोपाइनस यूरीस्टर्नस :– इसे साधारणतः 'शार्ट नोज्ड केटिल लाउस' कहते हैं। यह जाति गौवंश पर पाई जाने वाली जुँओं में सबसे बड़ी जूं है तथा पशुओं की गर्दन, सिर व पूँछ पर मुख्यतः पाई जाती है। इसके अण्डे खाल व बालों पर चिपके रहते हैं। शीतकाल के अन्तिम माह फरवरी व मार्च में इनका प्रकोप सबसे अधिक होता है। यह जाति पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में रक्तहीनता पैदा करती है।

2. हिमेटोपाइनस ब्रूफेलाई :– भारतवर्ष में भैंसों पर पाई जाती है।

3. लीनोग्नेथस ओवीलस :– यह जाति भेड़ों पर पाई

जाती है। इसे साधारणतः भेड़ की शरीर जूं या नीली जूं या फेस लाउस कहते हैं। इनका शरीर नीले रंग का होता है।

4. लीनोग्नेथस पीडेलिस :– यह भी भेड़ की जूं है जो टांगों व पैरों पर पाई जाती है। इसलिए इसे 'पाद जूं' कहते हैं।

5. लीनोग्नेथस स्टेनोप्सिस :– भारतवर्ष में बकरियों के शरीर पर पाई जाती है।

6. माइक्रोथोरेसिअस कमेली :– यह ऊँट पर पाई जाती है।

पशु पर कुप्रभाव :

जूं पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में उत्तेजना पैदा करती है। निरन्तर उत्तेजना से पशु अपने शरीर को काटता है, खरोंचता है, व्याकुल रहता है तथा आराम नहीं कर पाता। जिससे वह भोजन नहीं कर पाता। जूं काटने के स्थान पर जो रक्त बाहर आकर जम जाता है इस पर मक्खियाँ आकर्षित होती हैं जिससे 'स्ट्राईक' रोग उत्पन्न होता है। पशु कमजोर हो जाता है तथा रक्त की कमी हो जाती है और उसका उत्पादन घट जाता है।

उपचार –

जूं नष्ट करने के लिए विभिन्न कीटनाशक दवायें निमज्जन (dips) छिड़काव (spray) नहलान (wash), बुकनी (dust) के रूप में प्रयोग की जाती है। गोपशुओं में 0.5 से 1.0 प्रतिशत मैलाथियान बुकनी के रूप में या 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स निमज्जन या छिड़काव के रूप में प्रयोग की जाती है। एक भाग फीनोथइजीन, दो भाग सोडियम फ्लोरोसिलीकेट तथा चार भाग आटे को मिलाकर बुकनी के रूप में 10 से 14 दिन के अन्तर में पशु के शरीर पर दो बार लगाने से नष्ट हो जाती है। सेविन (0.1 से 0.2 प्रतिशत) के प्रयोग से जूं पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

भेड़ों में 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स या 0.1 प्रतिशत निकोटिन के निमज्जन के प्रयोग से जूं समाप्त हो जाती है।

रोकथाम –

पशुओं को जूं से ग्रस्त होने से बचाने में सबसे अधिक महत्व गौशाला का अच्छा प्रबन्ध, सफाई, पशुओं का अच्छा स्वास्थ्य व अच्छा आहार है। जूं परपोशी से अलग जीवित नहीं रह सकते अतः पशुओं को ऐसे स्थान या बाड़े से कम से कम 2 से 3 सप्ताह तक दूर रखना चाहिए जहाँ जूं से ग्रस्त पशु हों। ज्यादातर जूं शीतकाल में पाई जाती है। अतः उस समय पशु की सफाई रखी जानी चाहिए।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।
2. रोगी पशु की नाड़ी गति, श्वांस गति तथा शारीरिक तापमान में परिवर्तन हो जाता है।
3. पशु का शारीरिक तापक्रम ज्ञात करते समय थर्मामीटर के पारे वाला बल्ब मलाशय से श्लेष्मा झिल्ली के संपर्क में होना चाहिए।
4. गाय भैंसों की नाड़ी गति कॉक्सीजियल धमनी से घोड़े की फेसियल धमनी से तथा भेड़, बकरी की नाड़ी गति फेमोरल धमनी से ज्ञात करते हैं।
5. श्वासगति, नाड़ी गति ज्ञात करते समय पशु सामान्य अवस्था में हो वह उत्तेजित/भयभीत न हो।
6. पशुओं में होने वाली बीमारियों को वर्गीकृत करने के 5 आधार हैं।
   1) रोग के कारक
   2) पीड़ित अंग
   3) प्रकोप एवं अवधि
   4) रोग विभाजन तथा
   5) रोग आरम्भ होने के आधार पर
7. पेचिस छोटी उम्र के पशुओं और मुर्गियों में होने वाला रोग है।
8. आफरा रोग में पशु के पेट में गैस बनती है।
9. कब्ज में पशु का गोबर सख्त हो जाता है।
10. खुजली रोग के कीटाणु 1/8'' से 1/2'' की दूरी पर त्वचा में छेद बनाकर घुस जाते हैं।
11. गोसीपोल – बिनौले या बिनौले की खल में पाया जाने वाला जहरीला पदार्थ है।
12. फीताकृमि एवं एस्केरिस आन्तरिक परजीवी तथा जूँ एवं किलनी बाह्य परजीवी है।
13. आन्तरिक परजीवियों के ईलाज के लिए कृमिनाशी औषधियाँ दी जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पशु की नाड़ी गति ज्ञात करने के लिए नाड़ी की धड़कने गिनने के लिए समय निर्धारित है।

(अ) 1 मिनट (ब) 2 मिनट
(स) 3 मिनट (द) 4 मिनट

2. गाय का शारीरिक तापक्रम है :
(अ) 100^{o} F (ब) 101.5^{o} F
(स) 103.5^{o} F (द) 107^{o} F

3. घावों के उपचार में काम में लिया जाता है।
(अ) एन्टीसेप्टिक (ब) एन्टीपायरेटिक
(स) एन्थेलमेन्टिक्स (द) एन्टीडायूरैटिक

4. पेचिस रोग का कारक है।
(अ) वैसीलस
(ब) किलनी
(स) *कॉक्सीडियम जरनाई*
(द) *सारकोप्टिस स्केविआई*

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. रोगी पशु किसे कहते हैं ?
6. अगर गाय को मलाशय में जख्म हो तो उसका शारीरिक तापक्रम कैसे ज्ञात करोगे ?
7. फीताकृमि एवं ऐस्केरिस परजीवी का नियन्त्रण लिखिए।
8. महामारी किसे कहते है?
9. मोच का इलाज बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

10. पशु के अस्वस्थ होने पर उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
11. गाय की श्वसन गति कैसे ज्ञात करोगे विस्तृत रूप में बताइए।
12. संसर्ग एवं संक्रामक रोगों में अन्तर बताइए।
13. घाव कितने प्रकार के होते हैं?
14. भोजन विषाक्तता का वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न :

15. जूँ एवं किलनी का पशुओं में होने वाले प्रकोप एवं नियन्त्रण का वर्णन कीजिए।
16. निम्न बीमारियों का कारण, लक्षण एवं उपचार लिखिए।
1) आफरा, 2) खुजली, 3) अतिसार, 4) कब्ज

उत्तरमाला :

1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (स)